रेनॉका (चिली),
दक्षिणी अमेरिका
अगस्त १५, २००३

सन्देश संख्या ६०

कर्म का सिद्धान्त

क्या चित्त–अहंकार, इसकी कामनाओं और कलह, आशंका और आशाभंग, बैर और विरोध, परावलम्बन और प्रतिरक्षा तथा विश्वास और बन्धन की दासता से मुक्ति– अतीत जीवन के शुभ कर्मों का एक परिणाम है? क्या चीज व्यक्ति को अधिक अन्तर्दृष्टि के योग्य तथा आसपास के प्रति संवेदनशील एवं जागरूक बनाती है? कौन सी ऊर्जा हमें शब्दजाल तथा संकेत के बिना समझने में समर्थ बनाती है? कौन सी ऊर्जा हमें परम्परागत सांस्कृतिक अनुबन्धन के मापदण्ड से परे चैतन्य की कुछ झलक पाने के योग्य बनाती है? ऐसा क्यों है कि एक व्यक्ति कुछ प्रकार की गतिविधियों और प्रतिक्रियाओं में अनुबन्धित, अनुकूलित एवं भयाभिभूत है जबकि और कोई न जाने क्यों इससे मुक्त रह जाता है?

नहीं, यह कर्म सिद्धान्त की बात नहीं है।

कर्म का सिद्धान्त महत्वाकांक्षा, बनने की प्रवृत्ति तथा मनस्तात्विक काल को स्थायित्व प्रदान करता है। कर्म सिद्धान्त तो चित्तवृत्ति की एक और जालसाजी है जिसमें उसके उन सभी उपादानों जैसे लोभ एवं भय, आकांक्षा एवम् आशंका तथा माया एवं मोह को बनाये रखने के लिए हर प्रकार के आश्वासन, धमकी, पुरस्कार तथा दण्ड का प्रावधान किया गया है। यह सिद्धान्त मन की कल्पना और आकाश–कुसुम है तथापि सतही तौर पर मान्य है। गहनतर घटनाक्रम तो कारण और कार्य की जंजीर है जो और कारणों को जन्म देता है। किन्तु यह जंजीर मन–अहंकार जो कि चित्तवृत्ति है, के हस्तक्षेप के बिना समझदारी की ऊर्जा के माध्यम से यहीं और अभी तत्काल तोड़ी जा सकती है। सिद्धान्त और धर्मशास्त्र, मत और मताग्रह तथा अवधारणा और निष्कष मन–अहंकार के विकास के लिए ही इस्तेमाल किये जाते हैं जबकि प्रत्यक्षबोध और करुणा की अन्तर्दृष्टि इस मन–अहंकार के ढाँचे के विलय की ओर ले जाते हैं और यही है कर्मचक्र से मुक्ति। इसके पश्चात् विभेदकारी चित्तवृत्ति (चित्त) पूर्वाग्रह एवं बन्धन के चक्र के बाहर दैनन्दिन कार्यों के सम्पादन हेतु विद्यमान रहती है। दर्शन (सत्य का) ऊर्जा का संचय है।

खोज (सिद्धान्तों में आश्रय की) ऊर्जा का अपचय है।

निम्नांकित घटनाओं को देखें :–

	चित्त	चेतना	चिति
१.	मन (व्यक्तिनिष्ठ)	निर्मन (सार्वजनीन)	चैतन्य (ब्रह्माण्डीय)
२.	मिथ्याभिमान	सद्‌गुण	सत्यनिष्ठा
३.	निहित स्वार्थ	गूढ़ अन्तर्दृष्टि	शून्यता
४.	विखण्डन	अखण्ड	मुक्ति
५.	विश्वास–बन्धन	उपकार	परमानन्द
६.	उलझन	प्रबोध	नित्यता
७.	द्वैत	अद्वैत	दिव्यता
८.	द्वन्द्व	बोध	सृजन
९.	पाप	सौम्यता	पवित्रता
१०.	मिथक	वास्तविकता	यथार्थता

चित्त (मिथक) चिति (यथार्थता) के संस्पर्श में आने पर चेतना (वास्तविकता) में रूपान्तरित होती है। आप (चित्त) को कुछ करना नहीं पड़ता है। चिति परिचालित करती है। चिति ही क्रियाशील होती है। यही अनुग्रह है। यही शिव–संवृत्ति है। यह मन द्वारा प्रतिपादित सम्पूर्ण मत और सिद्धान्तों की समाप्ति तथा समस्त कर्मों का दहन है। यही सृजन है। किसी साधन, पथ, पुस्तक, गुरू, आध्यात्मिक माफिया, पंथ, सम्प्रदाय, अतीन्द्रिय दर्शन, अटकलबाजी, संगठन, तकनीक, आदेश, व्यवहार के किसी प्रतिमान, अधिकारिता, छवि, विश्वास पद्धति तथा हेतु के माध्यम से आप इस सृजन तक नहीं पहुँच सकते हैं।

चैतन्य बुद्धि के माध्यम से परिचालित करके एक पूर्णतः भिन्न जगत का सृजन करेगा जो कि राजनीतिज्ञों, पुरोहितों और धार्मिक–सामाजिक–आर्थिक सुधारकों का बनावटी जगत नहीं है।

मुक्ति सृजन है, मुक्ति यथार्थ है, मुक्ति नित्य है, मुक्ति प्रबोध है, मुक्ति जीवन के जीवन्त स्वरूप के झरने में प्यास (पाप या मन) मिटाना है।

सब पर विजय प्राप्त किया हुआ, सब कुछ जानता हुआ ''मैं'' जो कि शून्यता है, जो कि शिव है – वह है अनासक्त, निष्कलंक, निरूपाधि, निर्बाध तथा हर स्तर पर दंभ और द्वैत के ध्वंस हो जाने पर पूर्ण रूप से मुक्त। किसे यह ''मैं'' गुरू कहेगा? स्वाध्याय और समर्पण ने यह चमत्कार किया! भक्ति समर्पण नहीं है। भक्ति द्वन्द्व, कामना और चित्तवृत्ति का प्रकट आयाम है, समर्पण निर्द्वन्द्व, कामना–ध्वंस तथा निर्मनावस्था का गोपनीय रहस्य है।

संगठित भक्ति की अभद्र शक्ति सामूहिक मानस पर नाटकीय प्रभाव डालती है जिसे विश्वभर में तथाकथित धार्मिक और आध्यात्मिक आन्दोलनों में आसानी से देखा जा सकता है। जिह्वा लड़खड़ाकर दैव भाषा बोलने का दावा करना, उन्मत्ततापूर्ण गतिविधि, स्थानीय सन्तों तथा काल्पनिक फरिश्तों की झलकें, ''पवित्र आत्माओं'' द्वारा भावोद्‌गार कराना (मगजधुलाई के पश्चात्) समरूचि भक्तों की भीड़ के अन्दर जंगल की आग की तरह फैलती है। क्रिश्चियन इवैन्जेलिकल आन्दोलनों, मुस्लिम ईद–समूहों, बौद्ध ध्यान समूहों, हिन्दुओं के देवी जागरणों, हरिकथाओं व रामायणों के सामूहिक कार्यक्रमों अथवा बाबा, माता, मामा, लामा, पन्थों, सम्प्रदायों के सभाओं, फेलोशिप, संत–समागमों तथा कुम्भ मेलाओं आदि में इस प्रकार की घटनायें नियमित रूप से घटित होती रहती हैं। ये सब घटनायें किसी ''दिव्य'' सत्ता के कारण नहीं घटती हैं बल्कि इनमें भाग लेने वालों की बढ़ती हुई आकांक्षाओं, आशाओं तथा अपेक्षाओं के द्वारा ऐसी उत्तेजना, और ऐसा ज्वर उभर आता है। जन समूह, व्यक्तित्व तथा पूजित विषयों अथवा विश्वास पद्धतियों के बाहुल्य और विविधता के बावजूद इन घटनाओं की समानता के कारण उपर्युक्त सभी प्रक्रियायें आसानी से समझी जा सकती हैं। ''धार्मिक'' अथवा ''अध्यात्मिक'' उन्मत्तता से उत्पन्न अनुभव मानवजाति में सर्वत्र समान और समनुरूप हैं। किन्तु चिति से आगत आध्यात्मिक प्रत्यक्षबोध अनुभवों के ढाँचे से सम्बन्धित नहीं हैं – इस प्रकार अनिर्वचनीय तथापि बोधगम्य है। अनुभव अहंकार है। शब्दजाल मिथ्याभिमान है। प्रसिद्धि अपवित्र है। प्रचार तो पागलपन है।

सत्य एवं दिव्यता में रूपान्तरित होने के लिए हर प्रकार के सिद्धान्तों और मताग्रहों को अतिक्रान्त करें।

अपि चेदसि पापेभ्यः सर्वेभ्यः पापकृत्तमः ।
सर्वं ज्ञानप्लवेनैव वृजिनं संतरिष्यसि ।।

(भगवद्‌गीता ४:३६)

यदि तू अन्य सब पापियों से भी अधिक पाप करने वाला है, तो भी तू चिति (पूर्ण चैतन्य) से आगत प्रज्ञा रूप नौका द्वारा निःसंदेह हर प्रकार के पाप–कर्मों को भली–भाँति पार कर जायेगा।

।। जय काशी विश्वनाथ गंगे ।।